23

भरत तथा त्रैलोक्यमंडन हाथी की भवावली

गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे नराधिपति ! एक बार बहुत मुनियों सहित देशभूषण तथा कुलभूषण केवली, कि जिनका उपसर्ग वंशस्थलगिरि पर राम-लक्ष्मण ने निवारण किया था तथा जिनकी सेवा करने से गरुड़ेन्द्र ने राम-लक्ष्मण पर प्रसन्न होकर उन्हें दिये गये अनेक दिव्य शस्त्रों से युद्ध में विजयी हुए थे। वे सुर-असुरों से पूज्य लोक प्रसिद्ध दोनों केवली भगवान अयोध्या के नंदनवन समान महेन्द्रोदय नामक वन में विशाल संघ सहित विराजमान हुए। यह समाचार मिलते ही राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न दर्शन करने के लिये प्रातःकाल में ही हाथी पर बैठकर जाने को उद्यमी हुए।

त्रैलोक्यमंडल हाथी, जिसको जातिस्मरण हुआ है वह आगे-आगे चलता है और दोनों केवली जहां पर्वत पर विराजमान है वहाँ देव समान शुभ चित्त वाला नरोत्तम गया। कौशल्या, कैकई, सुमित्रा और सुभद्रा- ये चारों मातायें साधु भक्ति में तत्पर, जिन शासन की सेविका, स्वर्गनिवासिनी देवियों के समान सैंकड़ों रानियों के साथ चल निकलीं तथा सुग्रीव आदि समस्त विद्याधर महाविभूति सहित आये। दूर से ही केवली का स्थान देखकर राम आदि हाथी से नीचे उतर गये, दोनों हाथ जोड़कर, नमस्कार करके केवली की पूजा की और अपने-अपने योग्य स्थानों पर विनयपूर्वक बैठ गये। केवली भगवान की दिव्यध्वनि में इस प्रकार व्याख्यान आया कि-

धर्म ही पूज्य है। जो धर्म का साधन करता है वही पण्डित है। यह दयामूल धर्म महाकल्याण का कारण जिनशासन सिवाय अन्य कहीं नहीं है। जो प्राणी जिनप्रणीत धर्म में रस लेता है वह त्रैलोक्य के अग्र भाग में परमधाम में विराजता है। यह जिनधर्म परम दुर्लभ है। इस धर्म का मुख्य फल तो मोक्ष है तथा गौण फल स्वर्ग में इन्द्रपद तथा पाताल में नागेन्द्रपद तथा पृथ्वी पर चक्रवर्ती आदि नरेन्द्रपद है। इस प्रकार केवली भगवान ने धर्म का निरुपण किया। केवली के वचन सुनकर सब को मन में प्रसन्नता हुई। ये वचन वैराग्य उत्पन्न करने वाले

थे क्योंकि रागादि संसार का कारण है तथा सम्यग्दर्शन-ज्ञान -चारित्रमोक्ष का कारण हैं।

फिर भक्ति से वंदन करके लक्ष्मण ने पूछा कि हे प्रभो! त्रैलोक्यमण्डन हाथी-गजबंधन को तोड़कर अत्यन्त ही क्रोधित हुआ और फिर शीघ्र शान्त हो गया। इसका क्या कारण है?

तब केवली भगवान ने कहा कि पहले तो इस हाथी को लोगों की भीड़ देखकर मदोन्मत्तता के कारण से क्षोभ हुआ और तत्पश्चात् भरत को देखकर पूर्वभव का स्मरण होने पर शान्त हो गया। चौथे काल की शुरुआत में भगवान ऋषभदेव हुए। उन्होंने राज्यादि समस्त परिग्रह का त्याग करके मुनिदीक्षा ग्रहण की। उनके साथ चार हजार राजा भी परिग्रह त्यागकर मुनि हुए, वे परिषह सहन नहीं कर पाने से व्रत भ्रष्ट होकर स्वेच्छाचारी हुए। भरत के पुत्र मारीचि ने भी भ्रष्ट होकर त्रीडण्डी का वेष धारण किया, उस समय सूर्योदय, चन्द्रोदय नामक दो राजपुत्रों ने दीक्षा लेकर चारित्र से भ्रष्ट होकर मारीचि का अनुसरणकर कुधर्म का सेवन कर अनेक भवों में जन्म-मरण किया।

एक समय चन्द्रोदय का जीव कर्म के उदय से नागपुर नामक नगर में राजा हरिपति की रानी मनोलता के गर्भ में उत्पन्न हुआ। उसने कुलंकर नाम का राजा होकर बहुत समय तक राज्य किया। सूर्योदय का जीव अनेक भव भ्रमण करके उसी नगरी में विश्वनामा ब्राह्मण की अग्निकुण्ड नाम की स्त्री के श्रुतिरथ नाम का पुत्र हुआ। इस प्रकार श्रुतिरथ पुरोहित पूर्वजन्म के स्नेह से राजा कुलंकर को प्रिय हो गया।

एक दिन राजा कुलंकर तपस्वियों के पास जा रहा था, रास्ते में उसे एक अभिननदन नामक मुनि के दर्शन हुए। वे मुनि अवधिज्ञानी थे और सर्वजन हितकारक थे। उन्होंने राजा से कहा कि तेरे दादा सर्प बने हैं, वे तापसियों की लकड़ियों के बीच में है, जब तापस लकड़ों को फाड़े तब तू उनकी रक्षा करना। कुलंकर राजा वहाँ गया और मुनि के कहे अनुसार सर्प को बचाया तथा तापसियों का मार्ग हिंसारूप जाना। उससे उदास होकर मुनिव्रत धारण करने की इच्छा हुई। तब पापकर्मी श्रुतिरथ पुरोहित ने कहा हे राजन! तेरे कुल में तो वेदों का धर्म चला आता है तथा तापस ही तेरे गुरु हैं और तू राजा हरिपति का पुत्र है तो वेदमार्ग का आचरण कर, जिनमार्ग को मत आचर। तू पुत्र को राज्य सौंपकर वेदाक्त विधि द्वारा तापस का व्रत धारण कर। मैं भी तेरे साथ तप करुँगा।

इस प्रकार पापी पुरोहित ने मूढ़मति कुलंकर का मन जिनमार्ग से विचलित कर दिया। कुलंकर की स्त्री सुदामा परपुरुषासक्त थी । उसने विचार किया कि राजा मेरे कुकर्मों को

जानकर दुःखी होकर तप धारण करता है, सो वह तप करे या नहीं करे, किन्तु कदाचित मुझे मारे तो? इससे पूर्व ही मैं उसको मार दूँ। इस प्रकार विचार करके उसने राजा और पुरोहित को भोजन में विष मिलाकर मार दिया। वे दोनों मरकर निकुंजिया नामक वन में पशुघातक पाप से सुअर बने, फिर दोनों मेंढ़क हुए, चूहा हुए, मोर, सर्प, कूकड़ा आदि होकर तिर्यंच योनि में परिभ्रमण किया। पुरोहित श्रुतिरथ का जीव हाथी हुआ तथा राजा कुलंकर का जीव मेंढ़क हुआ और हाथी के पैर के नीचे दबकर मरा और फिर मेंढ़क हुआ और पानी रहित सरोवर में उत्पन्न हुआ। वहाँ कौओं ने उसे मारकर खा लिया। फिर वह कूकड़ा बना, हाथी मरकर बिलाव बना, उसने कूकड़े को मारा। कुलंकर का जीव तीन जन्मों तक कूकड़ा हुआ और पुरोहित का जीव बिलाव हुआ और कुलंकर के जीव कूकड़ा को मारकर खा गया।

बहुत समय के बाद वे शिशुमार जाति के मच्छ हुए तो मच्छीमार ने जाल में पकड़कर कुल्हाड़ी से मार दिया। दोनों मरकर राजगृही नगर में ब्रह्माश नामक ब्राह्मण की स्त्री उल्का के गर्भ से पुत्ररूप में उत्पन्न हुए। उन्होंने पुरोहित के जीव का नाम विनोद और कुलंकर के जीव का नाम रमण रखा। वे दोनों अत्यन्त गरीब और विद्या रहित थे। इस कारण रमण ने परदेश में जाकर विद्याध्ययन का विचार किया। उसने घर से निकलकर पृथ्वी पर चारों ओर भ्रमते-भ्रमते चारों वेद तथा वेदों के अंग सीख लिये और बहुत समय के बाद राजगृही नगर में आ पहुंचा। उसे अपने भाई से मिलने की तीव्र अभिलाषा थी परन्तु नगरी में पहुंचते-पहुंचते सूर्यास्त हो गया। आकाश में मेघपटल के योग से अत्यन्त अंधकार छा गया, अतः वह एक पुराने भाग में प्राचीन यक्ष के मंदिर में बैठ गया। उसके भाई विनोद की संमिधा नाम की कुलटा स्त्री ने एक अशोकदत्त नामक पुरुष के साथ आसक्त होकर उसे मिलने के लिये यक्ष के मंदिर में आने का संकेत किया। अशोकदत्त को तो मार्ग में कोतवाल ने पकड़ लिया। अशोकदत्त के दुराचार का पता लगते ही विनोद हाथ में तलवार लेकर उसे मारने के लिये यक्ष के मंदिर में आया और वहाँ बैठे हुए अपने भाई रमण को ही अशोकदत्त समझकर मार दिया। अंधेरे में नजर भी नहीं आया कि कौन मरा है। इस तरह रमण मर गया और विनोद घर आ गया। थोड़े समय बाद विनोद भी मर गया। इस प्रकार दोनों अनेक भव प्राप्त करते रहे।

तत्पश्चात् विनोद का जीव तो सावलवन में जंगली पाड़ा हुआ और रमण का जीव अंधा रीछ हुआ। दोनों दावानल में जलकर मर गये। मरकर दोनों के जीव गिरिवन में भील हुए। वहाँ से मरकर हिरण हुए तो भीलों ने जीवित पकड़ लिया। क्योंकि दोनों अतिसुन्दर थे।

इधर तीसरे नारायण स्वयंभूति ने श्रीविमलनाथजी के दर्शन करके वापस आते हुए उन सुन्दर हिरणों (मृगों) को देखकर ले लिया और जिनमंदिर के बाजु में उनको रख दिया। उनको राजद्वार से भोजन मिलता तथा वे मुनियों के दर्शन और जिनवाणी का श्रवण करते। उनमें रमण का जीव (कुलंकर का जीव) हिरण था सो तो समाधिमरण करके स्वर्गलोक में गया तथा विनोद का जीव (पुरोहित का जीव) आर्त्तध्यान से तिर्यन्च गति में भ्रमा।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कपिल्या नगर का धनदत्त नाम का वणिक बाईस कोटि दीनार का स्वामी था। उस वणिक को वारुणी नाम की स्त्री के गर्भ से रमण का जीव, जो कि देव हुआ था, वह भूषण नाम का पुत्र हुआ। निमित्तज्ञानियों ने उसके पिता से कहा कि तुम्हारा यह पुत्र जिनदीक्षा धारण करेगा। इस कारण पिता चिंतातुर हुए, पिता का पुत्र के प्रति अतिशय प्रेम था इस कारण वे उसे घर में ही रखते, बाहर नहीं निकलने देते, उसके लिये हर प्रकार की सामग्री घर में ही मौजूद थी। वह भूषण सुन्दर स्त्री का सेवन करता, वस्त्र, आहार, सुगन्धादि का विलेपन करके घर में सुख से रहता। उसके पिता ने सैंकड़ों मनोरथ करके पाया था और एक ही पुत्र था अतः पूर्व जन्म के स्नेह से वह पिता को प्राणों से भी अधिक प्यारा था। पिता था विनोद का जीव और पुत्र था रमण का जीव, पहले दोनों भाई थे और इस भव में पिता-पुत्र हुए। अहो ! संसार की गति बड़ी विचित्र है। यह प्राणी संसार में कठपुतली के समान नाचता है। संसार का चरित्र स्वप्न के राज्य के समान असार है।

एक दिन प्रातःकाल के समय दुंदुभि के शब्दों की आवाज और आकाश में देवों का आगमन देखकर भूषण आश्चर्य को प्राप्त हुआ। वह स्वभाव से कोमलचित्त वाला धर्म के आचारों सहित महा हर्ष से युक्त दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करता हुआ श्रीधर केवली की वंदना करने के लिये शीघ्रता से जा रहा था कि वहाँ सीढ़ी से नीचे उतरते ही सर्प के काटने से मरकर चौथे स्वर्ग में महेन्द्र नाम का देव हुआ। वहाँ से चयकर पुष्करद्वीप में चन्द्रादित्य नाम के नगर के राजा प्रकाशयश की रानी माधवी के गर्भ से जगद्युत नाम का पुत्र हुआ। यौवन अवस्था में राज्य लक्ष्मी प्राप्त हुई, परन्तु संसार से अति उदास होने से उसका मन राज्य में नहीं लगा। उसके वृद्ध मंत्री ने कहा कि यह राज्य तुम्हारे कुलक्रम से चला आता है। अतः इसका पालन करो, तुम्हारे राज्य की प्रजा सुखी होगी। इस कारण मंत्री के हठ से उसने राज्य किया। वह राज्य के समय भी साधुओं की सेवा करता था। इस कारण मुनिदान के प्रभाव से मरकर देवकुरु भोगभूमि में उत्पन्न हुआ।

वहाँ से ईशान नामक दूसरे स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ चार सागर दो पल्य तक देवलोक के सुख भोगकर वहाँ से चयकर जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह में अचल नामक चक्रवर्ती की रत्ना नाम की रानी का अभिराम नाम का पुत्र हुआ। वह महा गुणवान और अतिसुन्दर था। उसको देखकर सब लोगों को आनन्द होता था। वह बाल्यावस्था में ही अतिविरक्त जिनदीक्षा धारण करना चाहता था और उसके पिता उसे घर में ही रखना चाहते थे। उसका विवाह तीन हजार कन्याओं के साथ हुआ; परन्तु वह विषय सुख को विष के समान जानता था, उसकी केवल मुनि होने की ही इच्छा थी; परन्तु उसके पिता उसे घर से बाहर नहीं निकलने देते थे।

वह महाभाग्य, महाशीलवान, महागुणवान, महात्यागी स्त्रियों में अनुरागी नहीं होता। स्त्रियां अनेक प्रकार के राग उत्पन्न करने वाले वचन बोले तथा अनेक प्रकार की सेवा करे तो भी उसको संसार की माया कीचड़ के समान लगती है। जैसे कीचड़ में पड़े हाथी को उसको पकड़ने वाला मनुष्य अनेक प्रकार के प्रलोभन देता है तथापि हाथी को कीचड़ नहीं रुचता है; उसी प्रकार उसे जगत की माया नहीं रुचती थी। वह शान्तचित्त पिता की इच्छा से अति उदास हुआ, घर में रहकर स्त्रियों के मध्य रहकर भी तीव्र असिधारा व्रत पालता था। स्त्रियों के मध्य रहकर भी शीलव्रत पालना, उसका संसर्ग न करने का नाम असिधारा व्रत हैं। वह मोतियों का हार, बाजुबन्ध, मुकुटादि पहिनता था; परन्तु उसको उन आभूषणों का प्रेम नहीं था। महाभाग्य सिंहासन पर बैठकर अपनी स्त्रियों को जिनधर्म का उपदेश देता था। तीनकाल में जिनधर्म के समान अन्य कोई धर्म नहीं है। यह जीव अनादिकाल से संसार में भटका करता है, यह तो किसी पुण्यकर्म के योग से मनुष्य देह मिला है।

यह बात जानकर कौन पुरुष संसार कूप में पड़ेगा अथवा कौन विवेकी (विषयों का) विष पियेगा। अथवा कौन बुद्धिमान पहाड़ के शिखर पर सोयेगा अथवा मणि की प्राप्ति के लिये कौन पण्डित नाग के मस्तक का हाथ से स्पर्श करेगा? ज्ञानी को तो इन विनाश करने वाले काम-भोगों के प्रति कहाँ राग उत्पन्न होगा? एक जिनधर्म का ही प्रेम महा प्रशंसा के योग्य तथा मोक्ष के सुख का कारण है। इत्यादि पारमार्थिक उपदेशरुप वाणी सुनकर स्त्रियों का मन भी शान्त हो गया, तथा उन्होंने भी नाना प्रकार के व्रत-नियम धारण किये। शीलवान राजा ने अपनी स्त्रियों को भी शील में दृढ़ता रखना सिखाया। मन और इन्द्रियों को जीतकर उस निश्चल चित्त सम्यग्दृष्टि ने, महाधीरवीर ने चौसठ हजार वर्ष तक कठिन तप किया। बहुत समय पश्चात् समाधिमरण करके पंच नमस्कार मंत्र का स्मरण करते-करते देह का त्याग

किया। और छठवें ब्राह्मोत्तर स्वर्ग में अपार ऋद्धि का धारक देव हुआ।

भूषण के भव में जो उसका पिता धनदत्त सेठ (विनोद ब्राह्मण का जीव) था। वह मोह के योग में अनेक कुयोनियों में भ्रमण करता हुआ जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र में पोदनपुर नाम की नगरी में अग्निमुख नामक ब्राह्मण की शकुना नाम की स्त्री में मृदुमति नाम का पुत्र हुआ। उसका नाम तो मृदु था। पर था वह स्वभाव से अतिकठोर, दुष्ट, महाजुआरी, अविनयी, तथा अनेक प्रकार के दुराचारों से भरा।

लोगों के कहने से माता-पिता ने उसको घर से निकाल दिया। वह घूमते-घूमते एक बार पोदनपुर नगर में आया। किसी एक के घर में पानी पीने के लिये अन्दर गया तो वहाँ एक ब्राह्मणी रो रही थी। उसने रोते-रोते पानी पिलाया। ठण्डा-मीठा पानी पीकर उसने ब्राह्मणी से पूछा कि तू किसलिये रोती है? तब उस ब्राह्मणी ने कहा कि तेरे जैसा ही मेरे भी एक पुत्र था। मैनें उसे गुस्सा करके घर से निकाल दिया है। तुझे देखकर अपने पुत्र की याद आने से आंसू आ रहे हैं। तब वह रोते-रोते कहने लगा कि हे माता ! तू रो नहीं तेरा वह पुत्र मैं ही हूँ। ब्राह्मणी ने उसे अपना पुत्र जानकर रख लिया और मोहवश उसके स्तनों में से दूध झरने लगा। वह मृदुमति तेजस्वी, रूपवान, स्त्रियों के मन को हरने वाला, धूर्तों का शिरोमणि, सदा जुऐं का ज्ञाता, हर कला को जानने वाला, काम-भोगों में आसक्त एक बसन्तबाला नाम की वैश्या को अतिप्रिय था।

एक दिन मृदुमति शशांक नगर के राजमहल में चोरी करने गया। राजा नंदिवर्धन का मन चन्द्रमुख स्वामी के मुख से धर्मोपदेश सुनकर वैराग्य से भर गया था। उसने अपनी रानी से आकर कहा कि हे देवी ! मैंने मुनि के मुख से मोक्षसुख को देने वाला धर्मोपदेश सुना है कि ये इन्द्रियों के विषय विषम दुःखदायी है इनका फल नरक निगोद है। अतः मैं तो अब जिनेश्वरी दीक्षा धारण करुँगा। तू दुःखी मत होना। इस प्रकार राजा को अपनी स्त्रियों को शिक्षा देते हुए सुनकर मृदुमति चोर अपने मन में विचारने लगा कि देखो, यह राजऋद्धि छोड़कर मुनिव्रत धारण कर रहा है। और मैं पापी अन्य का धन चोरी करता हूँ। धिक्कार है मुझे ! ऐसा विचार करके निर्मल चित्त होकर सांसारिक विषय भोगों से उदास हुआ। और स्वामी चन्द्रमुख के पास जाकर समस्त परिग्रह का त्याग करके जिनदीक्षा धारण कर ली। वह महाकठिन तप करता और अत्यन्त अल्प आहार लेता था।

दुर्गनाभगिरि के शिखर पर गुणनिधि नामक मुनि चार महीने से उपवास कर रहे थे।

वे सुर-असुरों तथा मनुष्यों द्वारा स्तुति करने योग्य महा ऋद्धिधारी चारण मुनि थे। वे चातुर्मास के चार माह पूर्ण करके आकाशमार्ग से अन्य जगह चले गये तथा मृदुमति मुनि आहार के लिये दुर्गनाभगिरि के समीप आलोक नगर में आये। वे पृथ्वी पर देखते हुए जाते थे, वहाँ नगरवासियों ने जाना कि ये तो वे मुनिराज हैं कि जो गिरि-शिखर पर तप कर रहे थे । ऐसा जानकर नगरजनों ने उनकी बहुत भक्ति की, पूजा की और अत्यन्त सुन्दर अहार प्रदान करके बहुत स्तुति की।

मृदुमति मुनि को लगा कि गुणनिधि मुनिराज गिरि पर रहे थे उनके भरोसे मेरी प्रशंसा हो रही है, तथापि उन्होंने मानवश मोन धारण किया और लोगों से नहीं कहा कि मैं वह महामुनि नहीं हूँ, वे मुनि अन्य हैं। तथा गुरु के पास जाकर भी माया दूर नहीं की, न प्रायश्चित ही लिया। इस कारण उनका वह भाव तिर्यन्च गति का कारण हुआ। तप बहुत किया था इस कारण वह पर्याय पूरी करके छठवें देव लोक में जहाँ अभिराम (रमण का जीव) देव हुआ था। वहाँ ही वे गये। पूर्व जन्म के स्नेह से इनके अत्यन्त प्रेम उत्पन्न हुआ। दोनों समान ऋद्धि धारक,बहुत सी देवांगनाओं के मध्य सुख सागर में मग्न सागरों तक सुख पूर्वक रहे। वहाँ से चयकर अभिराम का जीव भरत हुआ तथा मृदुमति का जीव मायाचार के दोष से जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में यह अति सुन्दर हाथी हुआ है।

समुद्र की गाज समान जिसकी गर्जना है तथा पवन समान जिसकी गति है, अति मदोन्मत्त तथा चन्द्रमा के समान उज्ज्वल जिसके दांत है तथा जो गजराजों के समस्त गुणों से सम्पन्न हैं जिस विजयादिक हस्तिवंश में इसने जन्म लिया है। महाकांति का धारक, ऐरावत समान, स्वच्छंद सिंह - बाघ आदि को हरने वाला, महा वृक्षों को उखाड़ने वाला, पर्वतों के शिखरों को तोड़ने वाला, विद्याधरों से भी न पकड़ा जाए तो भूमि गोचरियों की तो बात ही क्या ! जिसके वास से सिंहादि भी निवास छोड़कर भाग गये-- ऐसा प्रबल गजराज गिरि या वन में नाना प्रकार के फल-फूल का भोजन करता, मान सरोवर में क्रीड़ा करता, अनेक हाथियों के साथ विहार करता, कभी कैलाश में विलास करता. तो कभी गंगा के मनोहर पानी में क्रीड़ा करता तथा अनेक वन, गिरि, नदी, सरोवरों में सुन्दर क्रीड़ा करता, हजारों हथनियों के साथ क्रीड़ा करता, अनेक हाथियों के समूह का शिरोमणी स्वच्छन्द विचरता, मेघसमान गर्जना करता, मद झरता, ऐसा यह हाथी एक दिन लंकेश्वर ने देखा तथा विद्या के पराक्रम से इसे वश में किया और इसका नाम त्रैलोक्यमंडन रखा।

अभिराम का जीव भरत, और मृदुमति का जीव यह हाथी- इसके चन्द्रोदय-सूर्योदय के जन्म से लेकर अनेक भवों का सम्बन्ध है। इसलिये इस भव में भी भरत को देखकर पूर्वभव का स्मरण होने से यह हाथी शान्त हो गया। भरत भोगों से दूर रहा, मोह से दूर रहा, अब मुनिपद धारण करना चाहता है। और यह इसी भव में निर्वाण प्राप्त करेगा। ऋषभदेव के समय में ये दोनों सूर्यादय-चन्द्रोदय नाम के दो भाई थे। मारिची के भरमाने के कारण मिथ्यात्व को सेवन कर बहुत काल तक इन्होंने संसार में परिभ्रमण किया है, त्रस-स्थावर योनियों में भी जा आये हैं।

चन्द्रोदय का जीव कितने ही भव बाद राजा कुलंकर, फिर रमण ब्राह्मण, बहुत भवों के बाद समाधिमरण करने वाला मृगदेव, फिर भूषण नाम का वैश्यपुत्र, फिर स्वर्ग में गया फिर जगद्युति नाम का राजा हुआ, वहाँ से चयकर भोगभूमि में, वहाँ से दूसरे स्वर्ग में देव, वहाँ से महा विदेहक्षेत्र में चक्रवर्ती का पुत्र अभिराम हुआ। वहाँ से छठवें स्वर्ग में देव, और देव से भरत नरेन्द्र- यह चरम शरीरी है, अब अन्य भव नहीं धरेगा। सूर्योदय का जीव भी बहुत काल तक परिभ्रमण करते हुए राजा कुलंकर का श्रुतिरत नाम का पुरोहित हुआ तथा बहुत जन्मों के बाद विनोद नाम का विप्र हुआ, वहाँ से आर्त्तध्यान से मरकर मृग हुआ। बहुत जन्मों के बाद भूषण का पिता धनदत्त नाम का वणिक, वहाँ से मृदुमति नाम का मुनि अपनी प्रशंसा सुनकर मान पोषण के लिये मायाचार करके शंका दूर नहीं की- इस कारण तप के प्रभाव से पहले छठवें स्वर्ग में देव हुआ। तथा फिर वहाँ से आकर त्रैलोक्यमंडन हाथी हुआ। अब श्रावक के व्रत धारण करके देव होगा।

इस प्रकार जीवों की गति-दुर्गति जानकर, इन्द्रियों का सुख विनाशीक जानकर विषम वन को तजकर ज्ञानी जैनधर्म की आराधना करते है। जो प्राणी दुर्लभ मनुष्य देह प्राप्त करके भी जिनभाषित धर्म नहीं करता है वह अनन्त काल तक संसार में परिभ्रमण करता है, आत्म कल्याण से दूर रहता है। जिनवर के मुख से निकला दयाधर्म मोक्ष प्राप्त कराने में समर्थ है, इसके समान अन्य कोई धर्म नहीं है।

- श्री पद्मपुराण में से संक्षिप्त सार

Home Page